कविता पर्दे पर भी लिखी जा सकती है !

नवरत्न पांडे

(प्रवक्ता हिंदी),
सैकेंड्री शिक्षा विभाग, हरियाणा,
navratan.panday@gmail.com

इस साल के पहले दिन यूं ही तफरीह करते हुए 'बाजीराव मस्तानी' फिल्म देखी... पर्दे पर भावनाओं और विवशताओं की जद में जिंदगी की जंग और जद्दोजहद का एक बेहतरीन नमूना देखकर... निकला तो काफी समय तक अवाक् रहा... कुछ भी कहते नहीं बना... और उस दिन मैंने घर आकर अपनी डायरी में लिखा । ''बाजीराव मस्तानी'' देखकर अपने देश के सिनेमा पर गर्व हुआ । सिनेमा ने पूरे सौ साल पूरे कर लिए हैं । अनेक पड़ावों से गुजरते हुए दादा साहब फाल्के और सत्यजित राय साहब जैसे जहीन लोंगो ने जो शुरूआत की थी वह आज अपने पूरे यौवन काल में है। आज हम तकनीकि और सृजना के स्तर पर इतने समृद्ध है कि हॉलीवुड सिनेमा को टक्कर दे रहे हैं। संजय लीला भंसाली ने एक कविता लिखी है । कागज पर नहीं, पर्दे पर। भंसाली की सृजना शक्ति को मेरा प्रणाम !''

ये पंक्तियां लिखकर... इस फिल्म को मुझे भूल जाना था, लेकिन कुछ फिल्में अथवा किताबें जेहन में बस जाती हैं - जो वक्त बेवक्त याद आती हैं। यह फिल्म उस वक्त फिर ताजा हो गयी जब भारतीय सिनेमा का सबसे प्रतिष्ठित अवार्ड, 'फिल्म फेयर' की घोषणा हाल ही में हुई और बाजीराव मस्तानी की झोली में सात फिल्म फेयर आए। संजय लीला भंसाली को उत्कृष्ट निर्देशन के लिए - रणबीर सिहँ को बाजीराव पेशवा के किरदार के लिए उत्कृष्ट अभिनेता (बेस्ट एक्टर) का, दीपिका पादुकोण को मस्तानी के किरदार के लिए उत्कृष्ट अभिनेत्री का, प्रियंका चोपड़ा को सह अभिनेत्री का, बाजीराव पेशवा की पत्नी काशीबाई के किरदार के लिए, कत्थक सम्राट और नृत्य निर्देशक बिरजू महाराज जिनकी उम्र नब्बे साल हो गई है उन्हें ''मोहे रंग दो लाल'' गीत की कोरियोग्राफी और मा सा जिसने बाजीराव पेशवा की माता का किरदार निभाया उन्हें भी फिल्म फेयर मिला, फिल्म को सातवाँ फिल्म फेयर मिला एक ऐसी युवा महिला को जिसने किरदारों के लिए पोशाकें डिजाईन की थी।

''बाजीराव मस्तानी'' फिल्म रिलीज होने से पहले ही चर्चा में थी, क्योंकि फिल्मकारों के लिए अपने व्यावसायिक हितों के मद्देनजर फिल्म किन तारीखों में रिलीज हो यह महत्त्वपूर्ण होता है और भारतीय सिनेमा के लिए पिछले एक दशक से वर्ष का आखिरी महीना दिसंबर मायने रखता है तथा ज्यादातर बड़ी फिल्में दिसंबर में आने वाले अंतराष्ट्रीय त्यौहार क्रिसमिस के आसपास रिलीज होती हैं। ''बाजीराव मस्तानी'' के साथ

ही शाहरूख खान अभिनीत फिल्म ''दिलवाले'' भी अपनी बड़ी कास्टिंग तथा भव्य बजट के लिए चर्चा में थी। कुछ बड़ी पत्रिकाओं मे इस बात के चर्चे थे कि क्या शाहरूख खान अभिनीत व रोहित शेट्टी द्वारा निर्देशित 'दिलवाले' के साथ आ रही 'बाजीराव मस्तानी' बाक्स ऑफिस पर कोई कमाल कर पाएगी अथवा भंसाली को अपनी फिल्म की रिलीज तारीख 'दिलवाले' को देखते हुए आगे पीछे नहीं कर देनी चाहिए? हालांकि यह फिल्मी पत्रिकाओं का गॉसिप भी हो सकता है, लेकिन फिर यह भी खबर आई कि संजय लीला भंसाली को अपनी फिल्म की कामयाबी को लेकर गहरा आत्मविश्वास तो है ही, साथ ही यह भी सुना गया कि वे इस फिल्म पर पिछले 10-11 साल से काम कर रहे हैं। 'बाजीराव मस्तानी' को देखकर सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि फिल्में बनाना, खासकर पीरीयोडिक फिल्म अथवा ऐतिहासिक घटना क्रम को लेकर फिल्म बनाना बच्चों का खेल नहीं है, बल्कि बड़े परिश्रम और समर्पण का कार्य है।

फिल्म की कामयाबी और भव्य प्रदर्शन के बाद जब साक्ष्यों की पुष्टि के लिए इतिहास को खंगाला तो पता चला कि महाराष्ट्र के मराठा राजवंश के छत्रपति साहूजी के प्रथम पेशवा बाजीराव मल्लाड़ अठाहरवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में एक ऐसे योद्धा के रूप में ख्यात हुए जिन्होंने लगातार चालीस छोटे बड़े युद्ध जीतकर लगभग पूरे हिन्दुस्तान पर मराठों का भगवा ध्वज फहरा दिया था। सन् 1730 के आसपास इलाहाबाद के मुगल सूबेदार मोहम्मद खान बंगश, बुंदेलखंड के वयोवृद्ध राजा छत्रसाल पर हमला करता है तो छत्रसाल राजा, पेशवा बाजीराव से मदद मांगता है। पेशवा बाजीराव की बहादुरी के चर्चे पूरे भारतवर्ष में फैले थे अत: वह बंगश को खदेड़ देता है। बदले में राजा छत्रसाल ने पेशवा बाजीराव को अकूत धन दौलत के साथ अपना पुत्र समान मानते हुए राज्य का तीसरा भाग भी भेंट किया। 'मस्तानी' का किरदार इतिहास में यहीं से चर्चा में आता है। कुछ इतिहासकरों का मानना है कि मस्तानी स्वयं एक वीर योद्धा थी। वह खुद बाजीराव से सहायता मांगने जाती हैं। युद्ध दोनों मिलकर लड़ते हैं जहाँ वह पेशवा की बहादुरी से गहरे तक प्रभावित होती है। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि मस्तानी राजा छत्रसाल के दरबार में एक सामान्य लेकिन खूबसूरत गणिका थी। जबकि कुछ का मानना है कि मस्तानी राजा छत्रसाल की मुस्लिम बेगम रूखसाना की बेटी थी। जिसे तलवार व घुड़सवारी का शौक था। राजा छत्रसाल पेशवा द्वारा की सहायता से अभिभूत होकर मस्तानी को भेंट स्वरूप उपहार में देते हैं। परिमाणत: नृत्य, तलवार व घुड़सवारी में पारंगत मस्तानी बाजीराव का दिल जीत लेती है। अथवा उसकी बहादुरी से प्रभावित होकर स्वयं दिल हार जाती है तथा लाव लश्कर के साथ पूना आती है। यहीं से पूरे मराठवाड़ा में दोनों के इश्क के चर्चे आम होते हैं। मराठा ब्राह्मण राजवंश में उस समय किसी मुसलमान पत्नी को स्वीकार करना संभव नहीं था। लिहाजा मस्तानी को तत्कालीन समाज व मराठा परिवार का कोप भाजन बनना पड़ा। हालांकि मस्तानी ने बाद में लगभग 1734 ई० में एक पुत्र को जन्म दिया और उसकी बहादुरी के चर्चे हुए। यह पुत्र भरी जवानी में, मात्र सत्ताईस-अठ्ठाईस साल की आयु में मुगलों के साथ युद्ध करते हुए पानीपत की तीसरी लड़ाई में मारा गया। उस वीर योद्धा का नाम था शमशेर बहादुर। कहते हैं कि - बाजीराव मस्तानी की मोहब्बत को यदि मराठवाड़ा राजवंश द्वारा स्वीकार कर लिया जाता तो आज इतिहास की शक्ल कुछ और ही होती। लेकिन यह भी सत्य है कि इश्क-मुहब्बत के मसलों में 'काश' जैसा शब्द बेमानी होता है। इतिहास ऐसे सैकड़ों पात्रों और घटनाक्रमों से भरा पड़ा है। जब समाज

द्वारा आशिकों की भाव दशा को समझा ही नहीं गया और शायद यह 'नहीं समझना' भी अस्तित्वगत ही था। क्योंकि घटनाएँ वैसे ही घटती है जैसे उन्हें घटना होता है। इसी प्रक्रिया को तो 'नियति' कहा जाता है।

खैर ! इतिहास तो आधी हकीकत, आधे फसानों से भरा पड़ा है। लेकिन हम बात कर रहे थे फिल्म "बाजीराव मस्तानी" की। जिसे फ्रेम दर फ्रेम गूंथा विनम्र एवं शांत व्यक्तित्व के संजय लीला भंसाली ने। कथावस्तु अथवा कथा तत्व की दृष्टि से देखें तो उर्पयुक्त प्लॉट में ऐसा कुछ नजर नहीं आता जिससे प्रभावित होकर घटनाक्रम को फिल्म के लिए चुना जाए। लेकिन नहीं, जहीन निर्देशक के पास कथा को देखने के लिए एक और आँख होती है जिसे - 'सिक्सथ सेंस' अथवा छठी इंद्री कहते हैं। उसी छठी इंद्री से भंसाली ने कथातत्व में कुछ कल्पनाओं के छींटे भी दिए तो कुछ विशेष अवसरों को साथ लेते हुए एक बेहतरीन फिल्म किसी काव्य कृति की तरह अस्तित्व में आई। मसलन, इतिहास गवाह है कि 'मस्तानी' अंत तक इस बात के लिए संघर्ष करती रही कि - मराठा राजवंश उसे बाजीराव पेशवा की सम्मानित पत्नी का दर्जा दे दे। पेशवा की पहली पत्नी काशीबाई उससे बात करें, उसे सम्मान दे – लेकिन, काशीबाई स्त्री की स्वाभाविक 'सौतिया डाह' के चलते उससे कभी नहीं मिलती। पेशवा की माताश्री, उसका भाई चिमाजी अप्पा और पेशवा का पुत्र 'नाना साहब' मस्तानी को कैद कर लेते हैं।

ऐतिहासिक घटनाओं को ज्यों का त्यों दिखाकर आप इतिहास लेखन में तो योगदान दे सकते हैं लेकिन मनोरंजन के लिए जो कहानी आप फिल्म के माध्यम से कहना चाहते हैं, छूट ही जाता है। अत: साक्ष्यों को दरकिनार करते हुए भंसाली; मस्तानी और काशीबाई को न केवल मिलवाते हैं बल्कि दोनों पर देवदास की पारो और चंद्रमुखी की तरह एक गीत भी फिल्माते हैं।

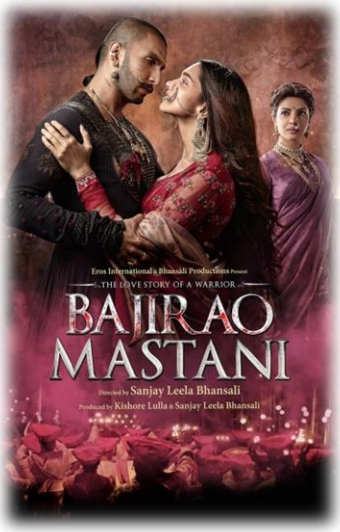

फिल्म निर्माण एक धैर्य का कार्य है - निर्देशक धैर्य के साथ अपने मन में फ्रेम दर फ्रेम दृश्यों को बुनता रहता है। एक बहुत बड़े स्पेस के बिना यह संभव नहीं होता। अब कास्टिंग की यदि बात करे तो - फिल्म देखकर लगता है कि बाजीराव पेशवा का किरदार रणवीर सिंह के अलावा और कोई कलाकार जी ही नहीं सकता था। उनका शारीरिक सौष्ठव, उनकी मस्त योद्धा सी चाल और संवाद अदायगी और उस पर ठेठ मराठी भाषा की टोन - 'एक्सेंट' यह और कही संभव ही नही था। कहते है कि पिछले कुछ समय से रणबीर सिंह और दीपिका पादुकोण सचमुच ही 'प्रेम' में हैं - अत: उसी भावदशा का लाभ लेने के लिए भंसाली ने उन्हें कास्ट किया। सचमुच ही दोनों ही कलाकारों की केमिस्ट्री देखते ही बनती है। ढ़ाई घंटे की इस फिल्म में यो तो सैकड़ों दृश्य हैं - एक से बढक़र एक है - मगर फिर भी कुछ दृश्य अपनी संवाद अदायगी की उत्कृष्टता, पात्रों की आपसी केमिस्ट्री, बेहतरीन भाषा और शब्द संपदा के कारण अमर हो उठे हैं। मसलन फिल्म का पहला ही दृश्य जब छत्रपति साहूजी के दरबार में पेशवा का चुनाव होना है। यहाँ दौड़ में और भी राजा एवं सूबेदार है। यहीं रणबीर सिंह

यानि बाजीराव पेशवा का पर्दे पर पदार्पण होता है। मोर पंख को रेत के ढूंह में गाड़ दिया जाता है - और तीर कमान से निशाना लगाकर मोर पंख को दो हिस्सों में तोड़ना है। यहाँ कमान की प्रत्यंचा पर तीर चढ़ाकर जिस महारत से रणवीर सिंह खींचता है, उसकी वीरता और वेशभूषा दर्शक को वास्तविक लगती है। अन्ततः एक संवाद के साथ वह पंख को दो हिस्सों में काट देता है। वह संवाद है - ''चीते की चाल, बाज की नजर और बाजीराव की तलवार पर संदेह नहीं करते, कभी भी मात दे सकती है।''

फिल्म में मस्तानी के किरदार को दीपिका पादुकोण ने जीवंत कर दिया, वह खूबसूरत तो है ही, साथ ही उसकी लंबाई व तलवार चलाने की कला व घुड़सवारी का अंदाज। साफ लगता है कि उसने बहुत मेहनत की है। बाजीराव की मुहब्बत में नूर उसके चेहरे से छलक पड़ रहा है। ये वही नूर है खुदा का, जो इश्क मुहब्बत के दौर में खुदा से, अस्तित्व से उपहार में मिलता है। एक दृश्य है जब पेशवा की माताश्री द्वारा उसे नीचा दिखाने की मंशा से उसे घुंघरू देकर छत्रपति साहूजी के दरबार में नाचने के लिए भेजा जाता है तो वह घुंघरू जमीन पर रखकर छत्रपति साहूजी से उपहार में अपने लिए पेशवा बाजीराव बल्लाड़ को मांग लेती है। छत्रपति साहूजी कहते हैं कि - इस गुस्ताखी के लिए तुम्हारी जान भी जा सकती है - तुम्हें इस बात का पता है? यहां मस्तानी जो बोलती है और जिस अदा से बोलती है, वह उसके परिपक्व अभिनय व अथाह उर्जा का साक्षी है। यथा; ''किसकी तलवार पे सिर रखना है ये बता दो मुझे, इश्क करना गर खता है तो सजा दो मुझे, ए मुहब्बत का इतिहास लिखने वालों, मैं अगर हर्फ ही गलत हूँ तो मिटा दो मुझे।''

भंसाली ने उसे बहुत बड़े संवाद नहीं दिए हैं - बल्कि उसकी आँखों से ज्यादा काम लिया है। एक जगह व इश्क की महिमा का बखान करते हुए कहती है - '' इश्क... ? जो तूफानी दरिया से बगावत कर जाए वो इश्क... भरे दरबार में जो दुनिया से लड़ जाए वो इश्क, जो महबूब को देखे तो खुदा को भूल जाए - वो इश्क।

दीपिका ने मस्तानी के पात्र को जीवंत कर दिया है। वह वास्तव में मस्तानी लगती है। मुहब्बत के रंग में रंगी-पगी वह अनेक भाव भंगिमाओं से 'मस्तानी' की मुहब्बत को जीती है। महान नृत्य निर्देशक पंडित बिरजू महाराज ने उन पर बेहतरीन काम किया है। ''मोहे रंग दो लाल'' गीत के दौरान उसका शारीरिक सौष्ठव व एक एक अंग की लचक देखते ही बनती है। एक अन्य दृश्य में बाजीराव उससे विदा मांगने आता है तो उसने इस संवाद को भी अमर कर दिया है कि- ''तुझे याद कर लिया है आयत की तरहा, अब तेरा जिक्र होगा इबादत की तरहा।'' इसी तरह फिल्म फ्रेम दर फ्रेम आगे बढ़ती है। बच्चे को जन्म देने के दृश्य में मस्तानी से दर्शक को श्रद्धा होती है वह दृश्य है ही इतना वास्तविक। लेकिन, प्रियंका चोपड़ा यानि काशीबाई किसी भी तरह से कमतर नहीं है। एक योद्धा की पत्नी का अहं और स्वाभाविक सौतिया डाह को प्रियंका ने जीवंत करके परिपक्व अभिनेत्री का परिचय दिया है। साथ ही उसने बर्फी और 'मैरीकॉम' की परम्परा के साथ-साथ अंतराष्ट्रीय फलक पर ख्याति प्राप्त 'क्वांटिको' की परंपरा को कायम रखा है। हालाँकि दीपिका की अपेक्षा उसे पर्दे पर समय थोड़ा कम मिला, लेकिन जितना मिला उसने काशीबाई के किरदार को जीवंत कर दिया। प्रियंका चोपड़ा के दो दृश्यों का उल्लेख यहाँ जरूरी जान पड़ता है। एक दृश्य है, जब उसके पास बाजीराव पेशवा नासिर जंग (निजाम पुत्र) से युद्ध करने के लिए विदाई लेने आता है। यहाँ वह शनिवार वाड़ा

के जगमगाते दीयों को बुझा रही है। दीवारों में बने असंख्य ताकों पर दीयों को उन दिनों प्रकाश व उल्लास का प्रतीक माना जाता होगा। वह उक्ताई हुई है, उसको तकलीफ हुई है पेशवा द्वारा मस्तानी को अपनाने से, उसके चेहरे पर दुख, क्लांति और वितृष्णा है। एक स्वाभाविक स्त्री सौतिया डाह के चलते हुए वह इस बात को पचा नहीं पा रही है। वह बहुत प्यार करती है, अपने पेशवा योद्धा पति से, लेकिन करे क्या ? हालांकि पेशवा विवश है, मस्तानी की मुहब्बत में। वह काशी का भी सम्मान करता है। यहाँ - काशीबाई एक संवाद बोलती है, वह कहती है - ''आप हमसे हमारी जिंदगी मांग लेते... हम खुशी-खुशी दे देते... पर, आपने तो हमसे हमारा गुरूर छीन लिया।''

ये दृश्य स्वाभाविक स्त्री चित की इर्ष्या का एक जीवंत दस्तावेज ही बन गया है। बाद में वह अपनी भावनाओं को दबाने के लिए लंबी फूंकनी में फूंक मार कर दीयों को बुझाती है। वहाँ भी उस पर रूदन इतना हावी है और अभिनय इतना स्वाभाविक है कि उसकी फूंक हलक में दम तोड़ती सी लगती है।

एक दृश्य और है कुछ ऐसा ही, यह बहुत विरला होता है कि भारतीय फिल्मों में हास्य और करूणा एक साथ पैदा हो। चार्ली चैप्लिन की फिल्मों और फिर बाद में राजकपूर की 'मेरा नाम जोकर', 'श्री चार सौ बीस' इत्यादि में कहीं कहीं ऐसा हुआ है जब हास्य अचानक करूणा में तब्दील हुआ और दृश्य अमर हो गया। दर्शक हँसते-हँसते जब अपनी आँख भी पोंछता है तो वह अनुभव उसके जेहन में बैठकर अमर हो जाता है। काशीबाई अपनी सासू मां के साथ एक दृश्य में मराठा महल के लिए झंडा सी रही है। यहां काशीबाई उदास है। उसे पेशवा से शिकायत है कि उन्होंने मस्तानी को अपनाते वक्त पल भर भी नहीं सोचा और हमें भुला दिया। यहाँ पेशवा की माता भी उन्हें विश्वास दिलाती है कि काशीबाई का दर्द वे समझती हैं । दोनों के चेहरे पर दुनियाँ भर की उदासी है। यहाँ अचानक माता भी कहती हैं -''अच्छा होता कि वे हरा झंडा सी देती और इस संवाद के साथ ही वे हँसती है - यहाँ वास्तविक अट्टहास है, वह ठठ्ठाकर हँसती है अपनी दशा पर, अपनी व्यथा पर, और हँसते हँसते उनकी आँख में आंसू आ जाते हैं। यह दृश्य विशेष प्रभाव पैदा करता है। यहाँ मस्तानी को स्वीकार करने को वे मुस्लिम आधिपत्य को स्वीकार करना मानती हैं। इस प्रकार फिल्म अपने चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ती है। पेशवा को इस बात की तकलीफ है कि वे मस्तानी के लिए सम्मान जनक स्थिति बहाल नहीं कर पा रहे हैं। अब स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि उन्हें पेशवाई और मस्तानी में से एक को चुनना है। वे खुली घोषणा करते हैं और अन्ततः पेशवाई ठुकरा देते हैं। नर्मदा किनारे बहिष्कृत जीवन जीने लगते हैं। लेकिन महादजी पंत और चिमाजी अप्पा द्वारा राष्ट्रभक्ति की याद दिलाए जाने पर पुनः नासिर जंग से युद्ध लड़ने को तैयार होते हैं। जब वे युद्ध के लिए निकलने ही वाले हैं , तो उन्हें सूचना मिलती है कि मस्तानी को सपुत्र कैद कर लिया गया है। सुनकर वे अकेले ही घोड़े के साथ निकल पड़ते हैं। यहाँ प्रथम दृष्टया दर्शक सोचता है कि वे मस्तानी को रिहा कराने जा रहे हैं, लेकिन नहीं, वे नासिर से जंग करने के लिए, अकेले ही निकल पड़े हैं। यहाँ पर निर्देशक शायद यह बताना चाहता है कि बहिष्कृत प्रेम, अस्वीकार्य प्रेम, तिरस्कृत प्रेम हिंसा की पराकष्ठा को ग्रहण कर लेता है। वह या तो स्वयं को समाप्त कर लेता है अथवा विरोधी को समाप्त कर देता है। यहाँ युद्ध में रणवीर सिहँ पेशवा के रूप में एक हिंसक योद्धा के रूप में बेहद खुबसूरत लगे हैं। साफ लगता है कि उनकी जान हथेली पर है। लेकिन नियति को कुछ और ही

मंजूर है और वे बच जाते हैं। जीत उन्हीं की होती है। युद्ध के अंतिम दृश्य में उन्हें एक विशाल स्तम्भ की मानिंद चित्रित किया गया है। जब वे गिरते है तो जैसे कोई विशाल किला ढ़ह गया।

विक्षिप्त प्रेम, बहिष्कृत प्रेम घातक होता है। वह विध्वसंक हो उठता है। ऐसे इतिहास में अनेक उदाहरण मिलते हैं। कहते हैं - कि हिटलर चित्रकार बनना चाहता था, वह एक यहूदी लडक़ी से प्रेम करता था। चंगेज खां बचपन में एक लडक़ी बोर्टे से प्रेम करता था। शहजादा आलमगीर (ओरंगजेब) हीरा बाई से प्रेम करता था। ये सारे के सारे ऐतिहासिक पात्र अन्तत: बड़े विध्वसंक व हिंसक सिद्ध हुए। इसके पीछे कुछ मनोविज्ञानियों का मानना है कि- एक कारण बहिष्कृत प्रेम अथवा तिरस्कृत मोहब्बत ही रहा है। अन्तत: पेशवा युद्ध तो जीत लेता है, लेकिन विक्षिप्त हो जाता है। उसको अन्तत: लगता है कि इतनी हिंसा और युद्धों के बाद भी जो उसके जीवन में सबसे खुबसूरत था वह नहीं रहा। उसे चारों तरफ युद्ध ही युद्ध दिखाई पड़ता है। उधर मस्तानी नाना साहेब की कैद में है। अंतिम दृश्य मृत्यु का है - बहुत खूबसुरत दृश्य गूंथा गया है पार्श्व में शब्द गूंजते हैं - पर्दे पर दोनों प्रेमी मृत्यु को वरण कर रहें हैं। शब्द हैं (वही जब अंतिम युद्ध के लिए बाजीराव मस्तानी से विदा लेने आते हैं) मस्तानी प्रेम की प्रतीक लाल पोशाक में है। शब्द गूजंते है - ''हमारे जाने का समय आ गया है मस्तानी साहिबा... अब हम उस दिन मिलेंगे जब आसमान में डूबता हुआ सूरज होगा और खिलता हुआ चाँद, उस दिन आसमान अपना रंग बदलेगा... अरमानों की आंधी चलेगी ... गरजते हुए बादल होंगे... सूखे पत्तों की सरसरहाट और बेवक्त की बारिश... न मजहब की बेडिय़ा होंगी... न रिश्तों के बंधन... बस एक आग महोब्बत की होगी।''

इस प्रकार फिल्म इरफान खान की आवाज के साथ समाप्त होती है। इरफान खान दिल से बोलते हैं। लगता है, यहाँ इरफान के सिवा कोई और नहीं बोल सकता था।

इरफान की आवाज दर्द और प्रेम में भीगी हुई आवाज है - ''उस दिन अपनी बेरहमी पर सबसे ज्यादा वक्त रोया था – मोहब्बत के आसमान ने अपने दो सितारों को खोया था। कहते हैं कि टुटे हुए सितारों को देख लो तो तमन्नाएँ पूरी हो जाती हैं... ये दो सितारे खुद अपनी तमन्ना के लिए टूटे थे... शायद यही समझाने आए थे दुनिया में। हर धर्म मोहब्बत सिखाता है पर मोहब्बत का तो कोई धर्म नहीं होता... वो खुद अपने आप में एक धर्म है।''

हालांकि फिल्म में कुछ गलतियाँ भी हुई हैं - जो शायद युवा दर्शकों को ध्यान में रखकर की गई हैं। मसलन रणबीर सिहँ पर फिल्माया गया 'मलहारी' गीत से बचा जा सकता था। हालांकि इस गीत के शब्द ज्यादात्तर वीर रस से ओतप्रोत करने वाले, ध्वन्यात्मक रखे गए हैं। फिल्म में बारिश के दृश्य - ठेठ महाराष्ट्र की जलवायु का परिचय करवाते हैं। मिलिंद सोमण महादजी पंत, छत्रपति साहुजी की भूमिका में महेश मांजरेकर और मा साहेब की भूमिका को निभाने वाली अभिनेत्री ने कमाल किया है। लेकिन सबसे ज्यादा संजय लीला भंसाली ने, जिनकों प्रेम कथाओं में महारत हासिल हो गयी है। वे अविवाहित है और किसी स्त्री के गहरे प्रेम में रहे हैं, या हैं। क्योंकि पर्दे पर अंत में लिखा आता है – for 's' यह 'एस' एक पहेली सा लगता है।